I रिपोर्ट का विषय

1.1 स्थायित्व के साथ आर्थिक प्रगति पाने के लिए एक कार्य-कुशल वित्तीय प्रणाली का होना अनिवार्य है। एक सुविकसित वित्तीय प्रणाली का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य है बचत करने वालों से अंतिम उपभोक्ता तक संसाधनों की सुगम और कुशल व्यवस्था सुनिश्चित करना। कुशल वित्तीय प्रणाली का होना विकास के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है, यह बात आर्थिक साहित्य में कोई नई नहीं रह गई है । वस्तुतः वाल्टर बैगहॉट ने अपनी प्रतिष्ठित पुस्तक *लोमबार्ड स्ट्रीट : ए डिस्क्रिपशन ऑफ द मनी मार्केट* (1873) में यह तर्क दिया था कि इंग्लैंड का कुशल पूंजी बाजार ही वह बात थी जिसकी वजह से औद्योगिक क्रांति संभव हो सकी। बैगहॉट ऐसे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने वित्तीय बाजारों की दो प्राथमिक भूमिकाओं को परिभाषित किया। प्रथम, वे पूंजी का संचय सुगम बनाते हैं। द्वितीय, वे निवेश परियोजनाओं और उद्योग विशेष में स्वभावतः निहित जोखिमों का प्रबंधन करते हैं।

1.2 आर्थिक विकास में वित्तीय विकास की भूमिका को सर्वाधिक प्रमुख और आद्योपांत मान्यता 1912 में मिली जब जोसेफ शुम्पीटर ने तर्क दिया कि वित्तीय विकास आर्थिक वृद्धि को उत्पादकता में उन्नति लाकर बढ़ाता है। यद्यपि यह मत लंबे समय तक मुख्य विचारधारा में प्रचलित नहीं हो पाया क्योंकि तमाम ख्यातिप्राप्त अर्थशास्त्रियों ने बाद में माना कि किसी उन्नत अर्थव्यवस्था के लिए वित्तीय प्रणालियाँ आवश्यक अंग के रूप में भले ही हो सकती हैं परंतु उनका तर्क था कि वे स्वयं वृद्धि में कोई योगदान नहीं करतीं। उदाहरणार्थ जॉन रॉबिन्सन (1952) का तर्क था कि वित्तीय प्रणालियाँ वास्तविक अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए धीमी गति से उभरती हैं। वास्तव में पूर्व के अनुभवजन्य कार्य सुझाते हैं कि यद्यपि आर्थिक वृद्धि और वित्तीय विकास आगे-पीछे हुए हैं, दोनों में किसी प्रकार के आकस्मिक संबंध का कोई प्रमाण नहीं है। उपर्युक्त मत आम तौर पर 1950 के दशक के बाद से 1970 के दशक के पूर्वार्ध तक स्वीकार किया जाता रहा। इस अवधि के दौरान शिक्षाविदों और नीति निर्माताओं का मानना था कि किसी अर्थव्यवस्था में विकास का एक निश्चित चरण पूरा होने के बाद ही वित्त का उभार होता है। पूर्व विकास साहित्य में वित्त के बारे में जो कुछ लिखा गया, केवल यह प्रचारित करना था कि कतिपय सामाजिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए वित्तीय प्रणाली का प्रबंधन किया जा सकता था। वास्तव में कई विकसित देशों को प्रोत्साहित किया जाता था कि वे राशनिंग अथवा ब्याज दर सीलिंगों के माध्यम से कतिपय अधिमानप्राप्त क्षेत्रों में क्रेडिट के प्रवाह को सुगम बनाएं। तथापि इन नीतियों में पायी गई नाकामियों को मैक किनॉन-शॉ(1973) द्वारा 'वित्तीय मंदी' कहा गया - जिसने वित्तीय प्रणाली की केंद्रीय भूमिका की अनुमति करने की ओर धकेला।

1.3 एंडोजीनस ग्रोथ थ्योरी (अन्तर्देशीय वृद्धि सिद्धान्त) के माध्यम से अग्रणी अर्थव्यवस्थाओं में वित्तीय प्रणालियों की भूमिका को भी अच्छी तरह समझा गया। इस मॉडल में वृद्धि के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है निरंतर उत्पादकता में वृद्धि जो प्रौद्योगिकीय रूप से अग्रणी रहने पर संभव हो पाती है। यह उत्पादकता को वृद्धि का मुख्य इंजिन बना देता है। सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण संरचनात्मक घटकों में से एक है वित्तीय प्रणाली (किंग एण्ड लेविन, 1993) जो उत्पादकता को प्रभावित करती है। यह मत शुम्पीटर द्वारा पहले सुझाए गए मत के अनुरूप था। लेकिन लेविन (1997) के अनुसार वित्तीय सेवाएं आर्थिक वृद्धि को पांच मुख्य सरणियों - बचत संग्रहण, संसाधन वितरण, जोखिम प्रबंधन, प्रबंध मॉनिटरिंग और व्यापार सुविधाओं के द्वारा प्रभावित करती हैं। पांचों सरणियों में से प्रत्येक पूंजी संचयन और प्रौद्योगिकीय नवोन्मेष प्रक्रिया दोनों में ही योगदान करती है। ये सभी बदले में आर्थिक वृद्धि में प्रत्यक्ष योगदान सोलो ग्रोथ मॉडल के द्वारा करते हैं।

1.4 वित्तीय सुधार और उदारीकरण जो 1980 के दशक में उभरती अर्थव्यवस्थाओं में लागू हुए तथा 1990 का दशक आम तौर पर मैकिनोन शॉ थेसिस (1973) द्वारा प्रेरित था। तथापि, पिछले दशक के वित्तीय संकट ने सुर्खियों में यह स्थापित किया कि एक दुर्बल वित्तीय प्रणाली न सिर्फ किसी देश को अंतरराष्ट्रीय पूंजी आप्रवाहों के प्रति उघाड़ते हुए संकट के प्रति अधिक संवेदनशील बनाती है बल्कि किसी वित्तीय संकट के आ पड़ने पर उसकी लागत में तीव्र वृद्धि करती है। पिछले दशक में कई उभरती हुई बाजार अर्थव्यवस्थाओं ने अपनी घरेलू वित्तीय प्रणालियों जिसमें वित्तीय बाजार - मुद्रा बाजार, सरकारी प्रतिभूति बाजार, विदेशी मुद्रा बाजार और ईक्विटी बाजार सम्मिलित हैं, को मजबूत बनाने के लिए महत्त्वपूर्ण प्रयास किए हैं। दुनिया के कई देशों में सरकारों की निधीयन आवश्यकताओं के मुख्य स्रोत के रूप में अब स्थानीय बांड बाजार उभरकर आए हैं। घरेलू कारपोरेट बांड बाजार में और साथ ही कुछ देशों में थोड़ी उन्नति हुई है तथापि बाजार के सेगमेंट में यह उन्नति धीमी रही है।

1.5 इन हालातों में वित्तीय बाजार विकास के प्रमुख उद्देश्य क्या हों? एक उभरती हुई अर्थव्यवस्था, जैसे भारत, के नज़रिए से वित्तीय बाजार विकास का प्रमुख उद्देश्य आर्थिक वृद्धि और विकास को अनिवार्य रूप से सहायता करना होना चाहिए। सामान्य अर्थ में वित्तीय बाजारों की मुख्य भूमिका होती है मध्यस्थ बनकर बचत करने वालों से निवेशकों तक संसाधनों को प्राप्त करना और अर्थव्यवस्थाओं में प्रतियोगी उपयोगों के बीच कुशल रूप से आबंटित करना ताकि बढ़े हुए निवेश और संसाधन उपयोग में बढ़ी हुई कुशलता दोनों ही माध्यमों से वृद्धि में योगदान किया जा सके (मोहन, 2007)।

1.6 भारत में लंबे अरसे से वित्तीय बाजारों का अस्तित्व रहा है। तथापि कई कारणों से ये बाजार सापेक्षिक रूप से अल्प विकसित रहे।

भारत ने 1990 के दशक के प्रारंभ में संरचनात्मक सुधारों के रूप में वित्तीय क्षेत्र के सुधार लागू किए। तब से भारतीय वित्त क्षेत्र, वित्तीय बाजारों को सम्मिलित करते हुए, में तेज रफ्तार से परिवर्तन हुए हैं। वित्तीय बाजारों में हुए सुधार के अंतर्गत सभी सेगमेंट आ जाते हैं यथा - मुद्रा बाजार, क्रेडिट बाजार, सरकारी प्रतिभूति बाजार, विदेशी मुद्रा बाजार, ईक्विटी बाजार और निजी कार्पोरेट ऋण बाजार। भारत में वित्तीय बाजारों का विकास इस प्रकार किया जा रहा है जिससे संरचना, बाजारों की कुशलता और स्थायित्व में आमूलचूल परिवर्तन लाया जा सके और साथ ही बाजारों को एकीकृत किया जा सके। इसके केंद्र बिंदु में मूल्य अभिज्ञान को मजबूत बनाना, प्रवाहों अथवा लेनदेनों पर प्रतिबंधों में ढील देना, लेनदेन लागतों में कमी करना और अर्थसुलभता में वृद्धि करना रहा है। सुधार-पश्च अवधि के दौरान वित्तीय बाजारों की संरचना ने वित्तीय बाजार के विभिन्न सेगमेंट्स में ट्रेड किए गए वित्तीय लिखतों और बाजार भागीदारों के संदर्भ में दर्शनीय परिवर्तन देखे हैं। इन बाजारों में किए गए विकास चरणबद्ध, क्रमिक और सावधानीपूर्वक वास्तविक अर्थव्यवस्था में अन्य बाजारों के अनुरूप किए गए थे। क्रमिक विकास में बाजार आधारभूत संरचना, प्रौद्योगिकी तथा नियत विधि से बाजार भागीदारों और वित्तीय संस्थाओं की क्षमताओं को विकसित करने की आवश्यकता का ध्यान रखा गया है। भारत जैसे कम आय वाले देश में मूल्य में गिरावट जोखिम (डाउन साइड रिस्क) की लागत बहुत अधिक है, अतः वित्तीय बाजारों का विकास करने के दौरान वित्तीय स्थायित्व बरकरार रखने के उद्देश्य को निरंतर ध्यान में रखना होगा (मोहन, 2007)।

1.7 वृद्धि को बढ़ाने के संदर्भ में वित्तीय क्षेत्र के सुधार गहरा प्रभाव डालते हैं और साथ ही साथ संकटों को निवारित करते हुए वित्तीय मध्यस्थों की कार्यकुशलता बढ़ाते हैं और प्रणाली को एक लोच उपलब्ध कराते हैं (रेड्डी, 2000)। यद्यपि वित्तीय बाजार के विभिन्न सेगमेंट आम तौर पर निश्चित रूप से अधिक गहन और अधिक अर्थसुलभ बन चुके हैं तथापि वित्तीय बाजार के सभी सेगमेंट के पूर्णतया विकसित होने के पहले अभी भी बहुत कुछ करना बाकी है। यथा अथॉरिटिओं की ओर से वित्तीय बाजारों को विकसित करने के प्रयास हमेशा किए जाते हैं, वित्तीय बाजारों को समय के इस पड़ाव पर विकसित किए जाने की आवश्यकता इतनी शिद्दत से इससे पहले कभी नहीं महसूस की गयी। उच्च आर्थिक वृद्धि जारी रखने की आवश्यकता, मौद्रिक नीति के संप्रेषण तंत्र को उन्नत करने, एक विविधतापूर्ण वित्तीय प्रणाली विकसित करने, वित्तीय एकीकरण से अधिकाधिक लाभ लेना और उसकी लागत न्यूनतम करना, और सुचारू रूप से पूंजी लेखा परिवर्तनीयता के लिए तैयार होना ये सभी बातें भारत में वित्तीय बाजारों को विकसित करने की दिशा में निरंतर और तीव्र गति से प्रयास करते रहने की आवश्यकता की ओर इंगित करती हैं।

निरंतर उच्च वृद्धि प्राप्ति के लिए संसाधन जुटाना

1.8 किसी भी अर्थव्यवस्था में वित्तीय प्रणाली की प्राथमिक भूमिका होती है उत्पादक निवेश के लिए संसाधन जुटाना और इसके द्वारा अर्थव्यवस्था की उत्पादक क्षमता में वृद्धि करना। निधियों के एक्सेस (सुलभता) को एक विकसित वित्तीय प्रणाली अधिकाधिक विस्तृत करती है। दूसरे अर्थों में किसी अल्प विकसित वित्त प्रणाली में निधियों की सुलभता सीमित होती है और लोगों को उनकी अपनी ही निधियां प्राप्त करने में तमाम कठिनाइयां आती हैं और उन्हें उच्च लागत पर अनौपचारिक स्रोतों जैसे साहूकारों का सहारा लेना पड़ता है (मोहन, 2006ग)। किसी बाजार आधारित अर्थव्यवस्था में घरेलू वित्तीय बाजार सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्तंभ होते हैं। वित्तीय बाजारों की महत्त्वपूर्ण भूमिका इस तथ्य से प्रकट होती है कि आम तौर पर बचतकर्ताओं और निवेशकों की आवश्यकताएं प्रकृति रूप में एक जैसी नहीं हैं। वित्त बाजार लिखतों की ट्रेडिंग में भी सुविधाजनक है और इसमें त्वरित बाह्य गमन की अनुमति भी है। बचत में अनिवार्यतः भविष्य के लिए उपभोग को सम्मिलित किया जाता है जिसके लिए अधिमान में घटबढ़ होती है जो चलनिधि, समय (अथवा परिपक्वता), सुरक्षा और जोखिम की आवश्यकता और भावी लाभ पर निर्भर करती है। इसी प्रकार विभिन्न उद्योगों में निवेश की आवश्यकताएं भिन्न-भिन्न हैं। अतः वित्तीय बाजार विभिन्न प्रकार की परिपक्वताओं वाली और अन्य विशेषताओं से युक्त लिखतों की एक श्रृंखला बचतकर्ताओं और निवेशकों की विभिन्न प्रकार की आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिए उपलब्ध कराने में मुख्य भूमिका का निर्वाह करते हैं। ऐसी लिखतों की अनुपस्थिति में पूंजी का जुटाना अपर्याप्त होगा। एक उथली वित्तीय प्रणाली में लिखतों की संख्या सीमित होती है। यह प्रणाली संभावित बचत नहीं कर सकती और न ही विभिन्न उत्पादक क्षेत्रों के लिए निवेश आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकती है और इसमें अर्थव्यवस्था के निष्पादन के लिए निहित प्रभाव होते हैं।

1.9 उच्च और सतत वृद्धि तथा विकास के लिए वित्तीय क्षेत्र के विकास के महत्त्व को समझते हुए उभरती हुई, बाजार अर्थव्यवस्थाओं (ईएमई) और विकासशील देशों के नीति निर्माताओं के द्वारा वित्तीय बाजारों के लिए उचित विनियामक पर्यावरण उपलब्ध कराने के लिए प्रयास किए जाते रहे हैं जो (i) प्रतियोगी ताकतों को बढ़ावा देते हैं; (ii) विभिन्न प्रकार की लिखतों के उपयोग को सुविधाजनक बनाते हैं; (iii) संभावित बचतकर्ताओं और निवेशकों को वित्तीय लिखतों और सेवाओं की बृहद रेंज उपलब्ध कराने वाली विभिन्न प्रकार की संस्थाओं की वृद्धि को बढ़ावा देते हैं; (iv) उनके जोखिम में कमी लाकर बचतकर्ताओं के हित की रक्षा करते हैं और (v) जोखिम प्रबंधन करनेवाली लिखतों का विकास करते हैं। आम तौर पर विनियमन का उद्देश्य जमाकर्ताओं और निवेशकों के हित की रक्षा (सुरक्षा और कारबार का संचालन) करना, वित्तीय समेकन को बढ़ावा देना, मौद्रिक और वित्तीय स्थायित्व सुनिश्चित करना तथा सतत आर्थिक प्रगति प्राप्त करना है।

1.10 2005-06 में भारतीय अर्थव्यवस्था में 9 प्रतिशत की वृद्धि हुई है और केंद्रीय सांख्यिकीय संगठन का अनुमान है कि 2006-07 के दौरान यह 9.2 प्रतिशत से बढ़ेगी। औसत वार्षिक वृद्धि दर पिछले चार वर्षों के दौरान 8 प्रतिशत से अधिक रही है। 2001-02 में सकल घरेलू निवेश दर सकल घरेलू उत्पाद का 23.0 प्रतिशत थी जो 2005-06 में

महत्त्वपूर्ण रूप से बढ़कर 33.8 प्रतिशत हो गयी। उसी अवधि के दौरान सकल घरेलू बचत दर भी 23.6 प्रतिशत से बढ़कर 32.4 प्रतिशत हो गयी जो सरकारी क्षेत्र की बचत में महत्वपूर्ण टर्नअराउंड और निजी कार्पोरेट क्षेत्र की बचत में वृद्धि पर आधारित थी। भारत में आर्थिक वृद्धि के बढ़ते रहने की संभावना को देखते हुए आशावादिता चारों ओर थी। ग्यारहवीं पंच वर्षीय योजना (2007-08 से 2011-12) दृष्टिकोण पर्चे का लक्ष्य है अर्थव्यवस्था को सतत वृद्धि पथ पर ले जाना जिसमें अंतिम वर्ष में लगभग 10 प्रतिशत वृद्धि दर मिलती हो और जो योजना अवधि में लगभग 9 प्रतिशत की औसत वृद्धि दर का यील्ड दे पायेगा। तथापि योजना आयोग द्वारा निवेशों से संबंधित निर्गमों का एक सेट चिह्नित किया गया है। ग्यारहवीं योजना अवधि में 9 प्रतिशत की औसत वृद्धि पाने के लिए दसवीं योजना की घरेलू निवेश की 27.8 प्रतिशत दर को बढ़ाकर ग्यारहवीं योजना की 35.1 प्रतिशत करने की आवश्यकता है। निवेश की यह वृद्धि कृषि में निजी निवेश करके, लघु और मध्यम उद्योगों और कार्पोरेट क्षेत्र से प्राप्त करने की उम्मीद है तथा शेष निवेश सरकारी क्षेत्र से, जिसमें सर्वाधिक ध्यान आधारभूत क्षेत्र पर होगा, प्राप्त करने की उम्मीद है।

1.11 मनोवांछित बचत और निवेश दरों की प्राप्ति के लिए स्वदेश में ही बड़े पैमाने पर संसाधन जुटाने की आवश्यकता होगी। भारत में उचित रूप से उच्च और वृद्धिकारी बचत दरें प्रचलित हैं। तथापि बढ़ती हुई व्यवस्था की निधीयन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सर्वाधिक आवश्यक है वित्तीय बचत जुटा पाना। इस संदर्भ में यह नोट किया जाए कि भौतिक बचत की वृद्धि दर हाल में वित्तीय बचतों की वृद्धि दर से अधिक रही है। यद्यपि यह चलन 2005-06 में उलट गया था, भौतिक बचतों में इसके बावजूद बढ़त जारी रही। भौतिक बचत को वित्तीय बचतों से विस्थापित करने को सुविधाजनक बनाने के प्रयोजनार्थ नवोन्मेष और आकर्षक वित्तीय लिखतों की आवश्यकता होगी। दीर्घावधि बचतों, जिनकी आवश्यकता वित्तीयन आधारभूत संरचना के लिए होती है, के निर्माण के लिए उचित लिखतें भी उपलब्ध होनी चाहिए। अतः वांछित प्रकृति के संसाधन जुटाने में वित्तीय बाजारों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होगी।

वित्तीय बाजार और मौद्रिक नीति

1.12 केंद्रीय बैंक के दृष्टिकोण से संपूर्ण अर्थव्यवस्था को मौद्रिक नीति की नब्ज़ का प्रभावी संप्रेषण करने के लिए विकसित वित्तीय बाजारों का होना बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। मौद्रिक संप्रेषण तब तक नहीं हो सकता जब तक कुशल मूल्य अभिज्ञान न हो, विशेष रूप से ब्याज दरों और विदेशी मुद्रा दरों के संदर्भ में (मोहन, 2007)। केंद्रीय बैंकों के द्वारा नीतिगत कार्रवाइयों के लिए संप्रेषण प्रक्रिया दो चरणों में की जाती है। पहले चरण में नीतिगत कार्रवाइयां वित्तीय बाजारों को संप्रेषित की जाती हैं। संप्रेषण तंत्र के दूसरे चरण में वित्तीय प्रणाली से मौद्रिक नीति नब्ज़ तथा सकल मूल्यों का प्रचार वास्तविक अर्थव्यवस्था में करना सम्मिलित है। नीति के सफल कार्यान्वयन के लिए आवश्यक है कि नीतिगत कार्रवाइयों के प्रभाव कितनी शीघ्रता से वित्तीय प्रणाली, वित्तीय मूल्य और मात्राओं से गुजर कर वास्तविक अर्थव्यवस्था में पहुंचते हैं जो घरेलू व्यक्तियों और फर्मों के सकल व्यय के निर्णयों को प्रभावित करते हैं और इसके बाद सकल मांग और मुद्रास्फीति को प्रभावित करते हैं, इस बात का उचित और सटीक मूल्यांकन किया जाए।

1.13 संप्रेषण तंत्र का पहला चरण इस बात पर निर्भर करता है कि किस प्रकार केंद्रीय बैंकों के बाजार परिचालनों में हुए परिवर्तन मुद्रा बाजार से अन्य बाजारों को, जैसे बांड बाजार और बैंक ऋण बाजार के माध्यम से, संप्रेषित होते हैं और इस प्रकार व्यक्तियों और फर्मों के व्यय करने के निर्णयों को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं। इसमें अवधि संरचना, जिसके द्वारा अल्पावधि मुद्रा बाजार दरें दीर्घावधि बांड दरों को प्रभावित करती हैं, और निधीयन, जिसके द्वारा बैंक दरें प्रभावित होती हैं, की मार्जिनल लागत सम्मिलित होती है। चूँकि पहले चरण में नीति लिखतों में परिवर्तनों की जानकारी वित्तीय प्रणाली के माध्यम से देना सम्मिलित है, मौद्रिक नीति को प्रभावी बनाने के लिए वित्तीय बाजार विकास की स्थिति, संस्थाओं अथवा मध्यस्थों की कार्यक्षमता और वित्तीय प्रणाली के संस्थागत तथा संरचनागत चारित्रिक विशेषताओं का होना आवश्यक है।

1.14 विकसित वित्तीय बाजार मौद्रिक नीति के बाजार आधारित लिखतों को उपयोग में लाने के लिए केंद्रीय बैंकों को सक्षम बनाते हैं ताकि वे मौद्रिक परिवर्तियों को अधिक प्रभावशाली ढंग से अपने निशाने पर ले सकें। विकसित वित्तीय बाजार कतिपय मैक्रो इकॉनॉमिक परिवर्तियों यथा - आर्थिक वृद्धि के लिए सम्भावित मार्ग, मुद्रास्फीति और वित्तीय परिस्थितियां जो प्रभावी मौद्रिक नीति के निर्माण हेतु आवश्यक होते हैं, के बारे में भविष्य की जानकारी प्राप्त करने में मौद्रिक अथॉरटियों को भी सक्षम बनाते हैं।

1.15 वैश्विक अर्थव्यवस्था में हाल ही में हुई प्रगति ने उन चुनौतियों को बढ़ाया है जो अॅथारटियां अब तक झेल रही थीं। मौद्रिक नीति के संचालन में मौद्रिक अथॉरिटियों द्वारा झेली जा रही प्रमुख चुनौती का आगमन नये पर्यावरण से हुआ है जिसकी पहचान है हाल के वर्षों में बढ़ा हुआ वैश्वीकरण। विशेष रूप से यह अर्थव्यवस्थाओं को बाह्य मांग, पूंजी प्रवाह में वोलैटिलिटी (अस्थिरता) और विदेशी मुद्रा दर आघात के प्रति भेद्य बनाती है। इस प्रकार सभी अर्थव्यवस्थाओं में मौद्रिक नीति निर्माण में अधिकाधिक परस्पर निर्भरता आ जाती है जो पहले नहीं थी और यह निर्भरता वैश्विक आर्थिक स्थितियों, अंतरराष्ट्रीय मुद्रास्फीतिकारी परिस्थिति, ब्याज दर, विदेशी मुद्रा दर संचलनों और पूंजी आप्रवाहों में पाई जाती है। इसके परिणामस्वरूप यद्यपि घरेलू विकास लगातार प्रमुखता में हैं तथापि वैश्विक कारकों की प्रमुखता निरंतर बढ़ती जा रही है। भारी भरकम विदेशी पूंजी आप्रवाह, वित्तीय बाजारों का वैश्वीकरण और सूचना प्रौद्योगिकी में हुई उन्नति इन सबने मिलकर मौद्रिक नीति लिखतों के विकल्प, परिचालनात्मक सेटिंग्स, अवधि संरचना और संप्रेषण तंत्र में महत्त्वपूर्ण बदलाव किए हैं (मोहन, 2004)। मौद्रिक नीति के संचालन में पायी जाने वाली बढ़ी हुई अनिश्चितता ने अर्थव्यवस्था पर प्रभाव डालनेवाले आघातों की प्रकृति के और उसके फलस्वरूप मूल्य स्थायित्व के लिए

जोखिमों के उचित मूल्यांकन को अपारदर्शी बना दिया है। इसने मैक्रो इकॉनॉमिक और वित्तीय डेटा के अर्थ निरूपण को भी कठिन बना दिया है।

1.16 भारतीय अर्थव्यवस्था के धीरे-धीरे उदार होने के साथ ही भारत में विदेशी पूंजी का भारी भरकम आप्रवाह शुरू हो गया जो प्रचलित चालू खाता घाटे से भी अधिक था। यद्यपि अर्थव्यवस्था को खोलने से विदेशी निवेशों के आप्रवाह के संदर्भ में लाभ हुआ जो उत्पादन और रोजगार के लिए सकारात्मक प्रभाव डालता है, तथापि इसने बृहद और वोलैटाइल पूंजी आप्रवाहों के बीच मैक्रो इकॉनॉमी के प्रबंधन के सामने नयी चुनौती खड़ी की।आवश्यकता से अधिक पूंजी प्रवाह के कारण पैदा लिक्विडिटी ओवरहैंग के ज्यादा देर बने रहने वाले अंतर्वाहों को अवशोषित करने के लिए बाजार स्थिरीकरण योजना (एसएमएस) लागू की गई। चलनिधि समायोजन सुविधा (एलएएफ) में भी आवश्यक परिवर्तन किए गए। तथापि आगे चलकर प्रभावी मौद्रिक प्रबंधन और वित्तीय स्थायित्व के लिए सक्रिय अर्थसुलभता प्रबंधन और अल्पावधि ब्याज को उचित बनाने की एक सही नीति अपनाने की निरंतर आवश्यकता होगी। बाहरी देशों से पूंजी के निर्बाध आगमन में उपर्युक्त मुद्दा और भी अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है (मोहन, 2006ख)।

1.17 मौद्रिक नीति के संप्रेषण तंत्र को उन्नत बनाने के लिए रिज़र्व बैंक का दृष्टिकोण मुद्रा बाजार के विभिन्न सेगमेंट्स का संतुलित विकास करना रहा है। तथापि मुद्रा बाजार के कतिपय अंग अभी भी विकसित नहीं हुए हैं। सरकार के ऋण प्रबंधक के रूप में सरकारी प्रतिभूतियों के लिए एक गहन और अर्थसुलभ बाजार का विकास रिज़र्व बैंक के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि मूल्य अभिज्ञान और सरकारी उधार की कम लागत इससे मालूम की जाती है। सरकारी प्रतिभूति बाजार मौद्रिक नीति के लिए भी प्रभावी संप्रेषण तंत्र उपलब्ध कराता है, हेजिंग उत्पादों को लागू करने और उनके मूल्यन में सुविधाजनक होता है तथा अन्य लिखतों के मूल्यन के लिए बेंचमार्क का काम करता है। वर्षों बाद सरकारी प्रतिभूति बाजार महत्त्वपूर्ण रूप से विकसित हुआ है तथापि पूर्णरूपेण विकसित होने के लिए अभी भी बहुत कुछ करने की आवश्यकता है। एक अर्थसुलभ और विश्वसनीय यील्ड कर्व, विशेषकर लंबी परिपक्वता पर, को और अधिक विकसित करने की आवश्यकता है। विकसित निजी कार्पोरेट ऋण बाजार का न होना भी मौद्रिक नीति की नब्ज़ के सुचारू संप्रेषण को नुकसान पहुँचाता है। भारत में हाल के वर्षों में वित्तीय बाजारों में ऊंचे दर्जे की गहनता और परिपक्वता आई है, विभिन्न वित्तीय बाजार सेगमेंट्स के बड़े पैमाने पर एकीकरण का मुद्दा भी प्रमुखता से रहा है, विशेषकर मौद्रिक नीति संप्रेषण के संदर्भ में। अतः मौद्रिक नीति के संदर्भ में विकसित और पूर्णतया एकीकृत वित्तीय बाजारों के महत्त्व को नज़र अंदाज नहीं किया जा सकता।

विविधतापूर्ण वित्तीय प्रणाली

1.18 यद्यपि वित्त के महत्त्व को चहुंओर मान्यता प्राप्त हुई है, तथापि हाल ही के वर्षों तक यह नहीं पता था कि सफल वित्त प्रणाली की प्रमुख विशेषताएं क्या होती हैं। अधिक व्यय करनेवाली यूनिटों से संसाधनों का स्थानांतरण व्यय के लिए पर्याप्त साधनों की कमीवाली यूनिटों को करने के लिए वित्तीय संस्थाएं और वित्तीय बाजार दो जेनेरिक तंत्र के रूप में काम करते हैं। यद्यपि अमरीका, यूके और अन्य एंग्लो सैक्सन देश की वित्तीय प्रणालियां पूंजी बाजार पर अधिक निर्भर करती हैं, जापान और जर्मनी में वित्तीय प्रणालियों में बैंकों का दबदबा है। दोनों ही प्रणालियों, बैंक आधारित तथा बाजार आधारित, में उनके विलक्षण लाभ और हानियां समाहित हैं। आम तौर पर निवेश अवसरों के बारे में सूचनाएं प्राप्त करने और उनका अर्थ निरूपण करने तथा परियोजनाओं की मॉनिटरिंग करने में बैंकों की स्थिति अधिक सुविधाजनक है। ऐसी प्रणाली में काम करने के लिए जिसमें कानूनी फ्रेमवर्क पर्याप्त रूप से विकसित नहीं हुआ है, बैंकों की स्थिति अधिक सुसज्ज है क्योंकि वे अपने द्वारा मांगी गई जानकारी उधारकर्ताओं से प्राप्त करने और उनसे चुकौती प्राप्त करने में सक्षम हैं। तथापि मध्यस्थों का झुकाव न्यून जोखिम परियोजनाओं की ओर रहता है। दूसरी ओर पूंजी बाजारों को यह सहूलियत है कि वे अनिश्चितता और नई अवधारणाओं से निपटने में सक्षम हैं और जोखिम वाली परियोजनाओं के निधीयन को सम्भव बनाते हैं। व्यवहार में दोनों ही प्रकार के तंत्रों का अस्तित्व साथ-साथ है और ये दोनों एक दूसरे के पूरक हैं तथापि एक प्रणाली दूसरी प्रणाली पर हावी हो सकती है।

1.19 कुछ लोग कहते हैं कि वित्तीय संरचना में अंतर का होना गंभीर विषय है। उदाहरणार्थ संबंध आधारित वित्तीय प्रणालियों की तुलना में दूरस्थ लेन-देन (ऐसे बाजार जिसमें बैंक घनत्व कम है और मध्यस्थरहित स्थिति अधिक है) वाली वित्तीय प्रणालियों में घाटे के क्षेत्रों से संसाधनों का पुनर्वितरण विस्तार प्राप्त कर रहे क्षेत्रों को बेहतर तरीके से किया जाता है। चूँकि दूरस्थ लेनदेनों में पूंजी बाजारों की विशेषताएं अधिक होने की संभावना है और बैंकों की कम, अतः इससे जाहिर है कि अधिक विकसित पूंजी बाजारोंवाली अर्थव्यवस्थाएं अधिक लोचपूर्ण और डायनेमिक हो सकती हैं और इस प्रकार वे बैंक आधारित वित्तीय प्रणालियों की तुलना में उच्चतर उत्पादकता और वृद्धि का लाभ पा सकती हैं (रैटो, 2006)। तथापि ऐतिहासिक अनुभवों से जाहिर है कि दोनों ही तंत्रों ने भलीभांति कार्य किया है। अगर बाजार आधारित प्रणालियां यूके और अमरीका में सफल रहीं तो वहीं बैंक आधारित प्रणालियां जर्मनी और जापान में सफल हुईं। पूर्व-एशियाई संकट के पश्चात यह आम तौर पर मान लिया गया कि एक संतुलित वित्तीय प्रणाली अपनायी जानी चाहिए जिसमें वित्तीय संस्थाएं और वित्तीय बाजार दोनों ही अहम भूमिका का निर्वाह करते हों।

1.20 ऐतिहासिक रूप से, उभरते हुए बाजारों और विकासशील अर्थव्यवस्थाओं की वित्तीय प्रणालियों में उनकी बैंकिंग प्रणालियों का स्थान प्रमुख है। बैंकिंग प्रणाली पर अत्यधिक निर्भरता वित्तीय प्रणाली को आघातों के प्रति दुर्बल बनाती है तथा संकट को बढ़ाती है, जैसाकि पूर्व एशियाई देशों में संकट के दौरान देखा गया है। विकसित पूंजी बाजार देशों को विदेशी पूंजी पर निर्भरता कम करने में भी मदद करता है।यह विशेष रूप से उभरते बाजार देशों के लिए अधिक आवश्यक है। चूंकि बाहरी ऋण ईएमई में दुर्बलता के एक प्रमुख स्रोत के रूप में रहता आया है,पूंजी

बाजार विकास संभवत: स्थिरीकरण प्रभाव(राटो,2006)का उपयोग कर सकता था। इसी प्रकार रिपो बाजार,मार्जिन ट्रेडिंग और डेरिवेटिव्स के जैसी कॉमप्लीमेंटरी अथवा समर्थनीय आधारभूत संरचना,यदि ईएमई में उचित फ्रेमवर्क में विकसित की जाए,लेनदेन लागत को कम करने का प्रमुख साधन बन सकती है। यह बाजार भागीदारों को जोखिम प्रबंधन करने और उन लोगों को अंतरित करने की अनुमति प्रदान करता है जो सक्षम और उसे ग्रहण करने की क्षमता रखते हैं। इस प्रकार इसके द्वारा एक सशक्त वित्तीय प्रणाली विकसित करने में मदद मिलती है।

1.21 ऐतिहासिक रूप से भारत में भी वित्तीय प्रणाली में आमतौर पर वित्तीय मध्यस्थों और विशेष रूप से बैंकिंग प्रणाली का दबदबा रहा है। यह प्रवृत्ति आमतौर पर कई वर्षों तक ज्यों का त्यों ही चलती रही है। घरेलू व्यक्ति अपनी बचत का एक अल्प भाग ही प्रत्यक्ष रूप से अथवा अप्रत्यक्ष रूप से म्युचुअल फंड के माध्यम से प्रतिभूति बाजार में निवेश करता है।अत: एक लंबी अवधि के बाद एक विविधतापूर्ण वित्तीय प्रणाली विकसित करने की आवश्यकता महसूस की गई जिसमें वित्तीय संस्थाएं और वित्तीय बाजार दोनों ही प्रमुख भूमिका अदा करते हैं।

1.22 विकसित पूंजी बाजार से सिर्फ इतना ही अपेक्षित नहीं है कि वे कारपोरेट्स को बाजार से संसाधन जुटाने में सहायता करें अपितु उनसे यह भी अपेक्षित है कि वे बैंकों को भी अपनी वृद्धि बनाए रखने के प्रयोजनार्थ संसाधन जुटाने में मदद करें। बैंकों को अपनी वृद्धि बनाए रखने के लिए निरंतर आधार पर बाजार से पूंजी जुटाने की आवश्यकता है। पूंजी की उनकी आवश्यकता बासेल-II का कार्यान्वयन करने पर बढ़ने की उम्मीद है। अत: पूंजी बाजार से संसाधन जुटाने में बैंकों की अक्षमता उनकी वृद्धि को रोक सकती है जिसमें आर्थिक वृद्धि के लिए दुष्प्रभाव निहित होते हैं। भारत में पेंशन और भविष्य निधि मिलकर अपने पास एक बृहद कॉरपस रखते हैं। तथापि ये निधियाँ न्यून लाभ दे पाती हैं क्योंकि उनके पास अपनी निधियों को उच्च मानवाले कारपोरेट बांड में निवेश करने के मौके सीमित होते हैं। विकसित निजी कारपोरेट बाजार इन पेंशन और भविष्य निधियों को अपनी निधियां कारपोरेट बांडों में लगाने में सक्षम बनाते हैं और उच्च लाभ देते हैं।

वित्तीय एकीकरण और वित्तीय बाजार

1.23 विकसित वित्तीय बाजारों की आवश्यकता घरेलू वित्तीय बाजारों के अंतरराष्ट्रीय वित्तीय बाजारों के साथ बढ़ते हुए एकीकरण के संदर्भ में भी उभरती है। आज के युग में वैश्वीकरण केवल अपने वित्तीय संदर्भ तक ही सीमित नहीं रह गया है अर्थात केवल वस्तुओं और सेवाओं के सीमा-पार लेनदेनों के प्रकारों तक ही सीमित नहीं है अपितु इसके दायरे में अंतरराष्ट्रीय पूंजी आप्रवाह,जो प्रौद्योगिकी के त्वरित और दूर-दूर तक प्रसार से संचालित है,भी आ चुका है। वास्तव में वैश्वीकरण के संबंध में हाल के वर्षों में अधिकतर साहित्य के केंद्र में वित्तीय एकीकरण रहा है जो विश्व स्तर पर वित्तीय बाजारों के उभरकर आने और विभिन्न घरेलू निकायों के लिए बाह्य वित्तीयन तक पहुंच उपलब्ध होने के कारण है। वैश्विक अर्थव्यवस्था के साथ घरेलू अर्थव्यवस्था का एकीकरण निवासियों को विविधीकरण के लाभ भी उपलब्ध करा सकता है। 1980 के दशक दौरान पूंजी खाता उदारीकरण को अनिवार्य माना गया और यहाँ तक कि उन्हें आर्थिक प्रगति के पथ पर अपरिहार्य कदम के रूप में जाना गया जो वस्तुओं और सेवाओं के अंतरराष्ट्रीय व्यापार की रुकावटों में कमी लाने के पूर्व प्रचलित मत के अनुरूप था। तथापि पूंजी खाता उदारीकरण घरेलू अर्थव्यवस्था को कतिपय जोखिमों के प्रति उघाड़ता है। पूंजी का बड़ी मात्रा में देश में आना वोलैटिलिटी को बढ़ाता है,अर्थात वित्तीय बाजार की प्रवृत्ति जिसमें बाजार उछाल पर पहुंचकर फिर औंधे मुंह नीचे गिरता है इसे बूम और बस्ट चक्र कहते हैं।दूसरा जोखिम संक्रमण का है अर्थात बाजार की अक्षमता जिसके कारण वह उधार लेनेवालों के बीच भेद नहीं कर पाता। इन जोखिमों,यदि भली भांति इनका प्रबंधन न किया गया,का बहुत ही भयानक दुष्परिणाम हो सकता है जैसाकि 1990 के दशक के मध्य में पूर्व एशियाई देशों के मामले में पाया गया था। अपर्याप्त अधूरे प्रबंधनयुक्त घरेलू वित्तीय क्षेत्र उदारीकरण का योगदान संकट में सर्वाधिक रहा है और हो सकता है यह संकट वित्तीय एकीकरण के परिणामस्वरूप आया हो (मिशकिन,2006)। इस प्रकार वित्तीय एकीकरण बढ़ने के साथ ही एक विकसित,सशक्त,प्रभावी और स्थायी वित्तीय प्रणाली का महत्व अत्यधिक प्रमुखता प्राप्त कर लेता है।

1.24 वैश्विक विकास की गतिविधियां,विशेष रूप से अंतरराष्ट्रीय वित्तीय बाजारों में, अपना प्रभाव सर्वाधिक गंभीर और प्रभावी रूप से किसी उभरते हुए बाजार की वित्तीयन स्थितियों पर डालती हैं। वित्तीय बाजारों की वोलैटिलिटी ईएमई को कई प्रकार से विपरीत और जटिल तथा परस्परसंबंधित रूप में प्रभावित करती है। विश्लेषण की सुविधा के लिए इस प्रभाव को सामान्यतया निम्नांकित वर्गों में रखा जा सकता है:- (i) ईएमई जिन वित्तीय स्थितियों में परिचालन करते हैं उन पर प्रभाव (ii) बैंकिंग क्षेत्र के तुलनपत्रों का असंतुलन और (iii) वास्तविक क्षेत्र में वृद्धि की संभावनाओं को बाधित करना (रेड्डी,2005)।

1.25 भारत 1990 के दशक के प्रारंभ से क्रमिक रूप से और सावधानीपूर्वक अपने पूंजी खाते को उदार करता आ रहा है। तथापि, अभी भी कतिपय क्षेत्रों में पूंजी खाते का रखरखाव भारतीय रिज़र्व बैंक के द्वारा किया जाता है। देश के लिए अपार निवेश की आवश्यकता को देखते हुए घरेलू बचतों को विदेशी पूंजी की सहायता की आवश्यकता है यद्यपि विदेशी पूंजी का अवशोषण मैक्रोइकोनोमिक आधार पर बनाए रखने लायक चालू खाता घाटे की मात्रा पर निर्भर करता है।

1.26 व्यापार के वैश्वीकरण और वित्तीय आस्ति का संचलन पहले की तुलना में अधिक स्वतंत्र रूप से होने के साथ ही भारत में डेरिवेटिव उत्पादों के माध्यम से जोखिम प्रबंधन की भूमिका भी महत्वपूर्ण हो गई है। भारतीय कंपनियों के ओवरसीज बाजारों के साथ बढ़ते हुए एकीकरण और अंतरराष्ट्रीय पूंजी बाजार में उनकी पहुँच होने के कारण एक व्यापक आधारवाले,सक्रिय और अर्थसुलभ विदेशी मुद्रा डेरिवेटिव्स बाजार विकसित करने की आवश्यकता हुई जो उन्हें अपनी विदेशी मुद्रा के एक्सपोजरों के

प्रभावी प्रबंधन के लिए हेजिंग उत्पादों की शृंखला उपलब्ध कराता है। डेरिवेटिव बाजार जोखिम का पुन: आवंटन वित्तीय बाजार के भागीदारों के बीच किया जाता है और इस प्रकार निवेशकों के बीच सूचना असममिति को वित्तीय बाजार कम करता है। डेरिवेटिव बाजारों में कुशल मूल्य अभिज्ञान में भी सहायता करता है और जोखिमों के प्रकटन को आसान बनाता है (गंभीर एण्ड गोयल, 2003)।

1.27 अत: यदि वित्तीय एकीकरण से मिलनेवाले लाभों को अधिकाधिक करना है तो अनिवार्य रूप से वित्तीय बाजारों को अत्याधुनिक बनाने की दिशा में सतत प्रयत्न होने चाहिए और ऐसी लिखतें विकसित की जानी चाहिए जो उचित मूल्यन,सहभागिता और जोखिमों के अंतरण की अनुमति देती हों।

1.28 वित्तीय बाजार को विकसित करने की आवश्यकता दो उच्च शक्तिप्राप्त समितियों अर्थात पूर्णतर पूंजी खाता परिवर्तनीयता पर समिति और मुंबई को अंतरराष्ट्रीय वित्तीय केंद्र में परिवर्तित करने पर उच्च शक्तिप्राप्त समिति के द्वारा रेखांकित की जा चुकी है। पूर्णतर पूंजी खाता परिवर्तनीयता पर बनी समिति ने जुलाई 2006 में प्रस्तुत अपनी रिपोर्ट में उल्लेख किया है कि पूर्णतर पूंजी खाता परिवर्तनीयता की ओर बढ़ने के लिए आवश्यक है कि यह सुनिश्चित किया जाए कि विभिन्न वित्तीय बाजार सेगमेंट न सिर्फ भली भांति विकसित हैं अपितु वे भली भांति एकीकृत भी हैं। ऐसा न होने पर किसी एक अथवा एक से अधिक बाजार सेगमेंट को पहुंचे आघातों का प्रवाह अन्य सेगमेंट को कुशलतापूर्वक नहीं होगा अन्यथा संपूर्ण वित्तीय प्रणाली ही उन आघातों को न्यूनतम क्षति के साथ ग्रहण करने में सक्षम हो जाती।

1.29 विकसित और भली भांति एकीकृत वित्तीय बाजार उच्च वृद्धि को कायम रखने,मौद्रिक नीति के प्रभावी संचालन,विविधतापूर्ण वित्तीय प्रणाली विकसित करने, वित्तीय एकीकरण और वित्तीय स्थायित्व सुनिश्चित करने के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण होते हैं।अत: प्रश्न यह नहीं है कि क्या हमें विकसित वित्तीय बाजारों की आवश्यकता है अपितु प्रश्न यह है कि कैसे हम उन्हें पूर्णरूपेण विकसित करें। आज के वित्तीय बाजार जटिल और अत्याधुनिक उत्पादों के लेनदेन से जुड़े हुए हैं। ऐसे उत्पादों को लागू करने के लिए स्पष्ट विनियामक फ्रेमवर्क,उचित संस्थाओं और मानव संसाधन योग्यताओं को विकसित करने की आवश्यकता होगी। वित्तीय बाज़ारों में और परिवर्तनों की गति इस बात पर निर्भर होगी कि हम कितनी तेजी से इन अपेक्षाओं को पूरा कर पाते हैं।

1.30 वित्तीय बाजारों से जुड़े अविनियमन,उदारीकरण और वैश्वीकरण वित्तीय स्थायित्व के प्रति विभिन्न जोखिमों को न्योता देते हैं। वित्तीय बाजारों में आमतौर पर भेड़चाल पायी जाती है और वित्तीय संस्थाओं के बीच संक्रमण और अत्यधिक प्रतियोगिता भी इन बाजारों को कहीं का नहीं छोड़ती। 1990 के दशक के एशियाई संकट से पता चलता है कि वैश्विक वित्तीय बाजार से घरेलू बाजारों में संकट आ सकता है। वित्तीय बाजार विवेकपूर्ण नीतियों से विचलन को दंडित करता है, इस परंपरागत बुद्धिमानी की बात के बावजूद यह पाया गया है कि कई बार वित्तीय बाजार अविवेकपूर्ण व्यवहार को सहन भी करता है और अन्य मौकों पर अपरिपक्वतापूर्ण तरीके से प्रतिक्रिया दिखाता है (लिप्सचिट्ज, 2007)। इन अस्थिरताकारी संभावित तत्वों को ध्यान में रखते हुए भारत में घरेलू वित्तीय बाजारों का उदारीकरण करने की प्रक्रिया के दौरान उचित विवेकपूर्ण सुरक्षा उपाय लागू किए गए हैं। वित्तीय बाजारों में अत्यधिक घट-बढ़ और वोलैटिलिटी निहित मूल्यों को छुपा सकते हैं और विरोधाभासी संकेतों को बढ़ा सकते हैं जिसके द्वारा कुशल मूल्य अभिज्ञान प्राप्त होने में कठिनाई पैदा होगी। तदनुसार नीतिगत प्रयासों में एक लक्ष्य यह भी रखा गया कि वित्तीय बाजारों में अनुशासन को सुनिश्चित किया जाए(मोहन,2006 क)। भारत में विनियामकों के लिए यह चुनौती रही है कि प्रणाली में अस्थिरता से बचते हुए कुशलता में किस प्रकार वृद्धि की जाए (रेड्डी, 2004)। वित्तीय बाजारों को विकसित करने और उन्हें विनियमित करने के इस दृष्टिकोण ने वित्तीय बाजारों को लोच प्रदान किया।

1.31 समग्र अर्थव्यवस्था की दृष्टि से वित्तीय बाजारों को विकसित करते समय यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि किस प्रकार ऐसे विकास समग्र वृद्धि और विकास को सहायता पहुँचाते हैं। ब्याज दर और विदेशी मुद्रा दर का मूल्य अभिज्ञान और बाजारों के बीच इस प्रकार के मूल्यों का एकीकरण अर्थव्यवस्था के वास्तविक क्षेत्रों में संसाधनों के कुशल वितरण में मदद करता है। वित्तीय मध्यस्थ, जैसे बैंक,भी वित्तीय बाजारों में ब्याज दरों के बेहतर निर्धारण से स्वयं के उत्पादों का बेहतर मूल्यन करने का लाभ उठा सकेंगे। इसके अलावा वित्तीय लिखतों के विभिन्न प्रकारों की उपलब्धता की मदद से स्वयं उनका अपना जोखिम प्रबंधन भी उन्नत हो सकता है। वास्तविक क्षेत्र की संस्थाओं की वित्त तक पहुँच होने में वित्त बाजारों के उचित विकास और बेंचमार्क ब्याज दर तथा प्रचलित विदेशी मुद्रा दरों की पारदर्शी सूचनाओं का भी योगदान है। वित्तीय बाजारों के विकास में रिज़र्व बैंक का दृष्टिकोण इन सभी बातों से निर्देशित है और साथ ही वित्तीय बाजारों में भागीदारी के लिए उचित विशेषज्ञता और क्षमताओं ,वित्तीय बाजार भागीदारों और वास्तविक क्षेत्र की संस्थाओं तथा व्यक्तियों दोनों के बीच, की उपलब्धता को भी ध्यान में रखता है(मोहन,2007)। रिज़र्व बैंक का दृष्टिकोण, प्रणाली में वित्तीय स्थायित्व बनाए रखने के पक्ष में सतर्कता बरतते हुए, बाजारों का निरंतर विकास करते रहने का रहा है।

1.32 पिछले 15 वर्षों के दौरान भारत में वित्तीय बाजारों को विकसित करने के लिए कई सुधारात्मक उपाय प्रारंभ किए गए। इसके परिणामस्वरूप वित्तीय बाजार के विभिन्न सेगमेंट अब अधिक विकसित और एकीकृत हुए हैं। अब तक महत्वपूर्ण वृद्धि हासिल करने के बावजूद वित्तीय बाजारों को उभरकर आनेवाली स्थितियों के अनुरूप और भी अधिक विकास करने की आवश्यकता है। भारतीय वित्तीय बाजारों की संरचना की समझ और भी आसान बनाने के लिए और मूल मुद्दों,जिन्हें इस प्रयोजन की प्राप्ति के लिए सुलझाना आवश्यक है,को चिह्नित करने के लिए 2005-06 के लिए इस रिपोर्ट केविषय का चयन ''**वित्तीय बाजारों का विकास और केंद्रीय**

बैंक की भूमिका'' के रूप में किया गया है। इस रिपोर्ट में भारत में वित्तीय बाजार के विभिन्न सेगमेंटों का विश्लेषण अंतर-कालिक विकास,विभिन्न देशों के साथ परस्पर तुलना के संदर्भ में वर्तमान प्रमुख मुद्दों और नीतिगत पहलों को प्रमुखता देते हुए गहराई से किया गया है। एक प्रयास वित्तीय बाजार के प्रत्येक सेगमेंट के लिए आगे के मार्ग की रूपरेखा तैयार करने के लिए भी किया गया। रिपोर्ट का मूल भाव विभिन्न नीतिगत उपायों के प्रभाव का मूल्यांकन करना था और यह देखना था कि भारत में वित्तीय बाजारों को विकसित करने के लिए आगे और क्या किया जाए। इस रिपोर्ट में सुझाए गए विभिन्न उपाय केवल एक विस्तृत दिशा का उल्लेख करते थे जिसके अनुसार भविष्य में बाजार के सुधारों को होना चाहिए। इनके कार्यान्वयन में उभरते हुए घरेलू और वैश्विक विकासों के अनुरूप सावधानीपूर्वक गुणानुक्रमांकन करना चाहिए। सुझाए गए उपायों का कार्यान्वयन उचित बाजार आधारभूत संरचना के विकास और बाजार खिलाड़ियों के ऊपर निर्भर होगा। वित्तीय बाजार के भागीदार विभिन्न जोखिमों के प्रति खुले होते हैं। अत: इन जोखिमों का मूल्यांकन सावधानीपूर्वक करने की आवश्यकता है। इसके मद्देनज़र बाजार के खिलाड़ियों को विकसित करने की आवश्यकता है जो जोखिमों को समझ सकें और जिनके पास उनसे निपटने के उपाय भी मौजूद हैं। जोखिमों का अंतरण ऐसे भागीदारों को करना जिन्हें उनकी समझ नहीं है और जो उनका प्रबंधन नहीं कर सकते,वित्तीय प्रणाली के लिए गंभीर परिणामोंवाला साबित हो सकता है। उपायों की गति और उनका गुणानुक्रम विश्वसनीय तरीके से आगे बढ़ने के मार्ग में सुविधा की डिग्री को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए।

1.33 यह रिपोर्ट,जिसमें यह अध्याय भी सम्मिलित है,नौ अध्यायों में पूरी होती है। मूल विषय आधारित चर्चा का प्रारंभ करने के रूप में रिपोर्ट का अध्याय-II, जिसका शीर्षक है 'हाल की आर्थिक गतिविधियां', 2005-06 और 2006-07 के दौरान (उस अवधि तक जिसके लिए आंकड़े उपलब्ध हैं) भारतीय अर्थव्यवस्था में मैक्रो इकोनोमिक विकास का एक विश्लेषणात्मक लेखा-जोखा प्रस्तुत करता है। इसके अलावा 2007-08 के लिए अद्यतन मैक्रोइकोनोमिक विकास ,जहाँ कहीं भी उपलब्ध हैं, को भी इसमें सम्मिलित किया गया है। इस अध्याय में छह बड़े अनुभागों को सम्मिलित किया गया है अर्थात वास्तविक क्षेत्र,राजकोषीय परिस्थितियां,मौद्रिक और ऋण स्थिति,वित्तीय बाजार,वित्तीय संस्थाएं और बाह्य क्षेत्र।

1.34 विषय आधारित रिपोर्ट का प्रारंभ अध्याय III ''मुद्रा बाजार'' से होता है। मुद्रा बाजार वित्तीय बाजार का एक प्रमुख सेगमेंट है जो मौद्रिक नीति के उद्देश्यों की प्राप्ति में केंद्रीय बैंक द्वारा संचालित मौद्रिक परिचालनों को एक आधार उपलब्ध कराता है। बैंकों तथा अन्य निकायों को अल्पकालिक निधियों की मांग और आपूर्ति की स्थिति में संतुलन उपलब्ध कराने के अतिरिक्त यह कुशल बाजार समाशोधन मूल्य सुनिश्चित करते हुए केंद्रीय बैंक को इतना सक्षम बनाता है कि वह वित्तीय प्रणाली में अर्थसुलभता की मात्रा और लागत दोनों ही को प्रभावित करने के लिए हस्तक्षेप कर सकता है और इस तरह वास्तविक अर्थव्यवस्था को मौद्रिक नीति की धड़कनों से अवगत कराता है। मौद्रिक बाजार के परिचालनों से जुड़ी कार्यविधि, लिखतों, उद्देश्यों, अर्थसुलभता प्रबंधन परिचालनों में उभरते कार्यव्यवहार और साथ ही साथ मुद्रा बाजारों की संरचनाओं के संबंध में अंतरराष्ट्रीय खाका खींचने के बाद इस अध्याय में भारत में मुद्रा बाजार के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा की गई है। यह अध्याय रिज़र्व बैंक के अर्थसुलभता प्रबंधन परिचालनों की भूमिका में परिवर्तन, परिचालन कार्यविधियों में बदलाव के अनुरूप,पर प्रकाश डालता है जो मुद्रा बाजार विकास को एक ठोस शक्ल देता है। यह जोखिम प्रबंधन की भूमिका और मुद्रा बाजार में विभिन्न जोखिमों को न्यून करने में रिज़र्व बैंक की सक्रिय भूमिका का भी वर्णन करता है। अध्याय में भारत में मौद्रिक और अर्थसुलभता प्रबंधन के उभरते हुए मुद्दों तथा मुद्रा बाजार के सुचारु रूप से कार्य करने और मौद्रिक नीति के कुशल संचालन के लिए भविष्य में इन मुद्दों का हल ढूंढने की आवश्यकता पर भी प्रकाश डाला गया है।

1.35 अध्याय IV में, जिसका शीर्षक 'क्रेडिट बाजार' है, भारत में क्रेडिट बाजार के विभिन्न पहलुओं का वर्णन किया गया है। आर्थिक वृद्धि में बाजार के महत्व पर सैद्धांतिक आधार की संक्षिप्त तस्वीर पेश करने के बाद यह अध्याय भारत में 1990 के दशक के प्रारंभ से क्रेडिट बाजार की संरचना और इसे ठोस रूप से विकसित करने के लिए प्रारंभ किए गए उपायों पर प्रकाश डालता है। अध्याय का फोकस, विशेष रूप से हाल के वर्षों में तीव्र गति से क्रेडिट वृद्धि पर अधिक जोर देते हुए, 1990 के दशक के प्रारंभ से भारत में क्रेडिट वृद्धि की प्रवृत्ति पर केंद्रित है। मौद्रिक नीति के क्रेडिट चैनलों से जुड़े पहलुओं, क्रेडिट में उछाल और मौद्रिक नीति से जुड़े विश्लेषणात्मक मुद्दों तथा बैंक क्रेडिट और आस्ति मूल्यों के बीच संबंधों को विस्तारपूर्वक समझाया गया है। क्रेडिट बाजार की भूमिका को और अधिक मज़बूत बनाने के लिए आगे के मार्ग की रूपरेखा तैयार की गई है।

1.36 अध्याय V में, जिसका शीर्षक ''सरकारी प्रतिभूति बाजार'' है, भारत में 1990 के दशक के प्रारंभ से सरकारी प्रतिभूतियों के विभिन्न पहलुओं को शामिल किया गया है और उन प्रमुख मुद्दों को चिह्नित करने की कोशिश की गई है जिनका समाधान ढूंढ़ना उभरती चुनौतियों का सामना करने के लिए आवश्यक है। इस अध्याय की शुरुआत सैद्धांतिक आधार और अंतरराष्ट्रीय अनुभवों पर आधारित एक गहन और अर्थसुलभ सरकारी प्रतिभूति बाजार, प्राथमिक और द्वितीयक दोनों ही, के लिए सिद्धांतों तथा नीतिगत बातों से होती है। भारत में सरकारी प्रतिभूति बाजार विकसित करने के खाके को प्रस्तुत करते हुए यह अध्याय 1990 के दशक के प्रारंभ से इस बाजार सेगमेंट के विकास में रिज़र्व बैंक द्वारा अदा की गई भूमिका के महत्व को रेखांकित करता है। अंत में इस अध्याय में कुछ मुद्दे उठाए गए हैं जिनका समाधान ढूंढना आवश्यक है क्योंकि सरकारी प्रतिभूति बाजार तभी उभरते हुए परिदृश्य में, विशेष रूप से राजकोषीय जिम्मेदारी और बजट प्रबंधन अधिनियम (एफआरबीएम)के परिप्रेक्ष्य में,और सशक्त भूमिका का निर्वाह करेंगे तथा पूर्णतर पूंजी खाता परिवर्तनीयता की ओर अग्रसर होंगे।

1.37 अध्याय VI जिसका शीर्षक ''विदेशी मुद्रा बाजार'' है, विदेशी मुद्रा बाजार को विकसित करने में केंद्रीय बैंक की भूमिका का विश्लेषण करने की दिशा में एक प्रयास करता है। ईएमई में अनुपालन किए जा रहे विभिन्न विदेशी मुद्रा प्रणालियों का एक संक्षिप्त अवलोकन करने के पश्चात इस अध्याय में भारत में विदेशी मुद्रा बाजार के विकास का प्रारंभ स्वतंत्रता के बाद की अवधि में विदेशी मुद्रा प्रणाली में हुए बदलावों के साथ पाया गया है। अध्याय में एक सशक्त विदेशी मुद्रा बाजार विकसित करने के लिए रिज़र्व बैंक तथा भारत सरकार के द्वारा विनियामक और नीतिगत पहलकदमी का उल्लेख किया गया है। यह वर्तमान में विदेशी मुद्रा बाजार की संरचना और बाजार खिलाड़ियों,ट्रेडिंग प्लेटफॉर्म,लिखतों और निपटान तंत्रों के संदर्भ में बाजार की आधारभूत संरचनाओं का भी उल्लेख करता है। इसके बाद इसमें बाजार अर्थसुलभता और कार्यकुशलता के संदर्भ में भारतीय विदेशी मुद्रा बाजार के निष्पादन का मूल्यांकन भी सम्मलित किया गया है। फॉरवर्ड प्रीमिया ,बिड ऑफर स्प्रेड्स और बाजार टर्नओवर के निर्धारकों के व्यवहार से संबंधित उदाहरणवाले अभ्यासों का भी इसमें समावेश किया गया है। यह 1990 के दशक के प्रारंभ से भारतीय विदेशी मुद्रा बाजार की यात्रा, विशेष रूप से प्राधिकारियों द्वारा वोलैटिलिटी और इसके प्रबंधन की अवधि को भी इसमें सम्मिलित करते हुए , प्रारंभ करता है। वित्तीय एकीकरण की उभरती हुई चुनौतियों से निपटने हेतु विदेशी मुद्रा बाजार को और अधिक गहन करने के लिए आवश्यक समझे गए उपायों का उल्लेख इसमें किया गया है।

1.38 अध्याय VII जिसका शीर्षक है ''ईक्विटी और कंपनी ऋण बाजार'', मुख्यतया दो अनुभागों में विभक्त है अर्थात ईक्विटी बाजार और कारपोरेट ऋण बाजार। आर्थिक वृद्धि के वित्तीयन में स्टॉक बाजार की भूमिका के सैद्धांतिक आधार पर चर्चा के बाद भारत में 1990 के दशक के प्रारंभ से पूंजी बाजार में सुधार लाने के वास्ते प्रारंभ किए गए उपायों का उल्लेख किया गया है। इसके बाद इस अध्याय में भारत में स्टॉक बाजार में आकार, अर्थसुलभता, लेनदेन लागत तथा वोलैटिलिटी पर विभिन्न सुधार उपायों के प्रभाव का मूल्यांकन किया गया है। जहाँ कहीं भी संभव हो सका है चयनित अंतरराष्ट्रीय बाजारों के साथ भारत में ईक्विटी बाजार के निष्पादन की तुलना की गई है। संपदा प्रभावों के साथ आस्ति मूल्यों का एक लेखा-जोखा और सकल मांग पर इसके प्रभाव को भी इसमें प्रस्तुत किया गया है। कारपोरेट बाजार पर लिखे गए खंड में आर्थिक वृद्धि को बढ़ाने तथा बहु वित्तीयन चैनल्स निर्मित करने, विशेषतया भारत जैसे उभरते हुए देश के लिए, निजी कारपोरेट बांड बाजार विकसित करने की आवश्यकता को रेखांकित किया गया है। इसके बाद 1980 के दशक के मध्य से भारत में बाजार के विकास ,निजी प्लेसमेंट बाजार के उद्भव और उनकी प्रमुखता का वर्णन और उन कारकों का वर्णन किया गया है जो बाजार के इस सेगमेंट की स्वस्थ तथा सशक्त वृद्धि को बाधित करते हैं। यह अध्याय चयनित सीमा-पार के देशों के प्रकाश में भारत में प्राथमिक ईक्विटी बाजार और निजी कारपोरेट बाजार विकसित करने की भूमिका को और अधिक महत्वपूर्ण बनाने के लिए आगे के मार्ग की ओर ध्यान आकर्षित करता है।

1.39 अध्याय VIII जिसका शीर्षक है ''वित्तीय बाजार समेकन'' वित्तीय बाजार समेकन के संकल्पनात्मक फ्रेमवर्क से प्रारंभ होता है जिसके बाद वित्तीय बाजार समेकन के विभिन्न आयामों और लाभों तथा जोखिमों पर चर्चा की गई है। इसके बाद यह अध्याय भारत में प्रारंभ किए गए विभिन्न नीतिगत उपायों का उल्लेख करता है जिन्होंने विभिन्न वित्तीय बाजार सेगमेंट के समेकन में मदद की है। भारत में घरेलू बाजार समेकन के चरणों पर संक्षेप में चर्चा के बाद यह अध्याय भारत में वित्तीय बाजार के विभिन्न सेगमेंट, अर्थात सरकारी प्रतिभूति बाजार, क्रेडिट बाजार, विदेशी मुद्रा बाजार और पूंजी बाजार, के समेकन के संबंध में एक विस्तृत अनुभव आधारित विश्लेषण प्रस्तुत करता है। बाजार समेकन और मौद्रिक नीति से जुड़े हुए मुद्दों पर भी प्रमुखता से प्रकाश डाला गया है। वैश्विक और क्षेत्रीय समेकन तथा भारत का वित्तीय समेकन भी इसमें सम्मिलित किया गया है। भविष्य पथ के रूप में यह अध्याय भारत में वित्तीय बाजार समेकन की प्रक्रिया को और अधिक मज़बूत बनाने के लिए कतिपय उपायों का सुझाव देता है।

1.40 अध्याय IX में जिसका शीर्षक है ''समग्र आकलन'', भारत में वित्तीय बाजार के विभिन्न सेगमेंट को और अधिक विकसित करने तथा उनका समेकन करने के लिए कुछ अंतिम उपायों का उल्लेख किया गया है।